शोध मंथन ISSN (P): 0976-5255 (e): 2454-339X Impact Factor 6.726 (SJIF)
Vol. X No.IV, pp (1043-1050) Oct.- Dec. 2019

जीवेम् शरदः शतम्

डॉ0 सुप्रिया संजू
असि0 प्रोफे0, संस्कृत विभाग,
अमेठी विश्वविद्यालय, हरियाणा
Email: supriyasanju@gmail.com

सारांश

वैदिक काल में सौ वर्ष की आयु समझा जाता था। इसीलिए सौ वर्ष की आयु की कामना व्यक्त की गयी है, वह भी पूर्णकायिक तथा मानसिक स्वास्थ्य के साथ। उल्लिखित सूक्त में यह इच्छा व्यक्त की गयी है कि हमें पूर्ण स्वास्थ्य के साथ सौ वर्ष का जीवन मिले, और यदि हो सके तो सक्षम एवं सक्रिय इंद्रियों के साथ जीवन उसके आगे भी चलता रहे।

अथर्ववेद से लिया गया यह मन्त्र मनुष्य के शतायु होने की कामना करता है। 20 काडों में विभक्त अथर्ववेद में अलग–अलग संख्या में कुछ एक सूक्त सम्मिलित हैं जिसमें पूर्ण शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य एवं दीर्घायुष्य की कामना व्यक्त की गयी है। उक्त सूक्त वस्तुतः छोटे–छोटे आठ मंत्रों का समुच्च्य है, ये मन्त्र हैं–

पश्येम शरदः शतम्।।1।।
जीवेम शरदः शतम्।।2।।
बुध्येम शरदः शतम्।।3।।
रोहेम शरदः शतम्।।4।।
पुषेम शरदः शतम्।।5।।
भवेम शरदः शतम्।।6।।
भूयेम शरदः शतम्।।7।।
भूयसीः शरदः शतम्।।8।।

(अथर्ववेद, काण्ड 19, सूक्त 67)

अर्थात् हम सौ शरदों तक देखें, यानी सौ वर्षों तक हमारे आंखों की ज्योति स्पष्ट बनी रहे (1); सौ वर्षों तक हम जीवित रहें (2); सौ वर्षों तक हमारी बुद्धि सक्षम बनी रहे, हम ज्ञानवान् बने रहे (3); सौ वर्षों तक हम वृद्धि करते रहें, हमारी उन्नति होती रहे (4); सौ वर्षों तक हम पुष्टि प्राप्त करते रहें, हमें पोषण मिलता रहे (5); हम सौ वर्षों तक बने रहें (वस्तुतः दूसरे मंत्र की पुनरावृत्ति (6); सौ वर्षों तक हम पवित्र बने रहें, कुत्सित भावनाओं से मुक्त रहें (7); सौ वर्षों से आगे ये सब कल्याणमय बातें होती रहें (8)।

वेद–पुराण में कई ऋषि–मुनियों की हजारों वर्षों तक की तपस्या का भी उल्लेख देखने

को मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति शत वर्ष की आयु को पूर्ण करे अतः हमारे ऋषि–मुनियों ने योग के साथ ही आयुर्वेद को जन्म दिया। स्वयं ऋषि–मुनि भी सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहकर ध्यान और समाधि में गति करना चाहते थे। अतः उन्होंने दोनों ही चिकित्सा पद्धति को अपने जीवन का अंग बनाया।

आयुर्वेद एक प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति है। बहुत से ऐसे रोग और मानसिक विकार हैं जिस पर योग के द्वारा समाधान नहीं प्राप्त किया जा सकता तो आयुर्वेद उसका विकल्प बन जाता है और बहुत से ऐसे रोग भी होते हैं जिसका समाधान आयुर्वेद में नहीं होता है तो योग उसका विकल्प बन जाता है।

आयुर्वेद को ऋग्वेद का उपवेद भी कहा जाता है। आयुर्वेद मानव जीवनचक्र को संतुलित रूप से संचालित करने की सर्वोत्कर्ष जीवन शैली है। मानव–जीवन की सुरक्षा तथा आरोग्य प्राप्ति के लिए हमारे ऋषि–महर्षियों ने अनेक उपाय आयुर्वेद में निर्दिष्ट किये हैं। आयुर्वेद का प्रमुख अंग योग का क्रियान्वयन न केवल आध्यात्मिक प्रयोजन के लिए किया जाता है बल्कि मानसिक शांति, शारीरिक शुद्धि और आरोग्यपूर्वक दीर्घजीवन की प्राप्ति के लिए भी किया जाता है। प्रकृति के मानदण्डों पर आधारित आयुर्वेद शास्त्र मनुष्य को संतुलित आहार, उत्तम दिनचर्या एवम् ऋतुचर्या वाला संतुलित विहार और इन्द्रिय विजय एवं विकार समाप्ति हेतु सद्वृत्त का आचरण करना सिखाता है, जो कि सदाचार पर आधारित होता है। जीवन के इन सभी सैद्धान्तिक मूल्यों को योग–कला के माध्यम से सहजतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है।

आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों के अनुसार वात, पित्त और कफ में से किसी एक के असन्तुलन से मानसिक अवस्था में तो परिवर्तन आता ही है, उससे शरीर पर कई बुरे प्रभाव पड़ते हैं। पतंजली योग में वर्णित अष्टांग योग के प्रथम तीन अंगों यम, नियम और आसन से त्रिदोष सन्तुलन में बड़ी सहायता मिलती है। योग और आयुर्वेद दोनों ही मूल रूप से शरीर से सम्बन्धित हैं। इनके आधारभूत सिद्धान्त सांख्य पर आधारित हैं आयुर्वेदिक योग पतंजलि के अष्टांग योग से ही ग्रहण किया गया है। इसका आधारभूत उद्देश्य है–अच्छा स्वास्थ्य, शारीरिक–मानसिक सन्तुलन और जीवन का सम्पूर्ण आनन्द।

प्रस्तावना

वैदिक काल में सौ वर्ष की आयु समझा जाता था। इसीलिए सौ वर्ष की आयु की कामना व्यक्त की गयी है, वह भी पूर्णकायिक तथा मानसिक स्वास्थ्य के साथ। उल्लिखित सूक्त में यह इच्छा व्यक्त की गयी है कि हमें पूर्ण स्वास्थ्य के साथ सौ वर्ष का जीवन मिले, और यदि हो सके तो सक्षम एवं सक्रिय इंद्रियों के साथ जीवन उसके आगे भी चलता रहे। वेद–पुराण में कई ऋषि–मुनियों की हजारों वर्षों तक की तपस्या का भी उल्लेख देखने को मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति शत वर्ष की आयु को पूर्ण करे अतः हमारे ऋषि–मुनियों ने योग के साथ ही आयुर्वेद को जन्म दिया। स्वयं ऋषि–मुनि भी सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहकर ध्यान और समाधि में गति करना चाहते थे। अतः उन्होंने दोनों ही चिकित्सा पद्धति को अपने जीवन का अंग बनाया। मनुष्य को

अपने वैयक्तिक, कौटुम्बिक और सामाजिक कर्तव्यों का पालन भली भांति करने के लिए यह आवश्यक है कि उसका शरीर स्वस्थ, सबल और निरोग रहे और किसी कारणवश शरीर में कोई दुर्बलता या कोई रोग आ जाये तो फिर यह भी आवश्यक है कि उसकी चिकित्सा करके उसे दूर कर दिया जाये। इसके लिए शरीर की रचना का ज्ञान होना और विभिन्न रोगों तथा उनको दूर करने वाली औषधियों का ज्ञान होना भी आवश्यक है। यदि सम्भव हो तो व्यक्ति स्वयं ही अपनी चिकित्सा कर सके अथवा चिकित्सक द्वारा करवा सके। वेद में सृष्टि के आदि में ही चिकित्सा शास्त्र विषयक आवश्यक ज्ञान का उपदेश दिया गया है।

आज जिसे साइन्स के रूप में जानते हैं या विभिन्न टेक्नोलॉजी के माध्यम से, विभिन्न उपकरणों के माध्यम से, रोगों का उपचार किया जा रहा है। यह समस्त पद्धति सृष्टि के आदि में अथर्ववेद में देखने को मिलती है।

आयुर्वेद

आयुर्वेद को ऋग्वेद का उपवेद भी कहा जाता है। आयुर्वेद मानव जीवनचक्र को संतुलित रूप से संचालित करने की सर्वोत्कर्ष जीवन शैली है। मानव–जीवन की सुरक्षा तथा आरोग्य प्राप्ति के लिए हमारे ऋषि–महर्षियों ने अनेक उपाय आयुर्वेद में निर्दिष्ट किये हैं। आयुर्वेद शब्द की बात करें तो आयुर्वेद शब्द दो शब्दों आयुष्+वेद से मिलकर बना है जिसका अर्थ है ''जीवन विज्ञान''– "Science of Life"। आयुर्वेद (Ayurveda) केवल रोगों की चिकित्सा तक ही सीमित नहीं है अपितु यह जीवन मूल्यों, स्वास्थ्य एवं जीवन जीने का सम्पूर्ण ज्ञान प्रदान करता है। आयुर्वेद का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है, पुरातत्ववेत्ताओं के अनुसार संसार की प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद है। विभिन्न विद्वानों ने इसका निर्माण काल ईसा के 3 हजार से 50 हजार वर्ष पूर्व तक माना है। इस संहिता में आयुर्वेद के अति महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का वर्णन है। अनेक ऐसे विषयों का उल्लेख है जिसके संबंध में आज के वैज्ञानिक भी सफल नहीं हो पाये हैं। इससे आयुर्वेद की प्राचीनता सिद्ध होती है। अतः हम कह सकते हैं कि आयुर्वेद की रचना सृष्टि की उत्पत्ति के आस पास हुई है। आयुर्वेद, हमारे ऋषि मुनियों की हजारों वर्षों की मेहनत एवं अनुभव का परिणाम है। आयुर्वेद केवल रोगों की चिकित्सा तक ही सीमित नहीं है अपितु यह जीवन मूल्यों, स्वास्थ्य एवं जीवन जीने के सम्पूर्ण ज्ञान प्रदान करता है। आयुर्वेद का ज्ञान पहले भारत के ऋषि–मुनियों के वंशों से मौखिक रूप से आगे बढ़ता गया उसके पश्चात् उसे पांच हजार वर्ष पूर्व एकत्रित करके उसका लेखन किया गया। आयुर्वेद पर सबसे पुराने ग्रन्थ चरक संहिता, सुश्रुत संहिता और अष्टांग हृदय हैं। यह ग्रंथ अंतरिक्ष में पाये जाने वाले पाँच तत्त्व–पृथ्वी, जल वायु, अग्नि और आकाश, जो हमारे व्यक्तिगत तंत्र पर प्रभाव डालते हैं उसके बारे में बताते हैं। यह स्वस्थ और आनंदमय जीवन के लिए इन पांच तत्वों को संतुलित रखने के महत्व को समझाते हैं। आयुर्वेद के अनुसार हर व्यक्ति दूसरों की तुलना में कुछ तत्वों से अधिक प्रभावित होता है। यह उनकी प्रकृति या प्राकृतिक संरचना के कारण होता है। आयुर्वेद विभिन्न शारीरिक संरचनाओं को तीन विभिन्न दोष से सुनिश्चित करता है।

वात दोष : जिसमें वायु और आकाश तत्व प्रबल होते हैं।

 Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com/* https://doi.org/10.31995/shodhmanthan

पित्त दोष : जिसमें अग्नि दोष प्रबल होता है।

कफ दोष : जिसमें पृथ्वी और जल तत्व प्रबल होते हैं।

ये त्रिधातु हैं। अगर इनमें संतुलन रहे, तो कोई रोग हम तक नहीं आ सकती। किन्तु जब इनका संतुलन बिगड़ जाता है, तो स्वस्थ मनुष्य भी अस्वस्थ हो सकता है। आयुर्वेद चिकित्सा में केवल रोग के लक्षणों को ही नहीं देखा जाता बलिक उसके साथ–साथ रोगी के मन, शारीरिक प्रकृति एवं अन्य दोषों की प्रकृति को भी ध्यान में रखा जाता है। उदाहरण के लिए जिन लोगों में पृथ्वी तत्व और कफ दोष से होने से उनका शरीर मजबूत और हट्टा कट्टा होता है। उनमें धीरे–धीरे से पाचन होने की प्रवृति, गहन स्मरण शक्ति और भावनात्मक स्थिरता होती है। अधिकांश लोगों में प्रकृति दो दोषों के मिश्रण से बनी हुई होती है। उदाहरण के लिए जिन लोगों में पित्त कफ प्रकृति होती है, उनमें पित्त दोष और कफ दोष दोनों की ही प्रवृतियां होती है परन्तु पित्त दोष प्रबल होता है। हमारे प्राकृतिक संरचना के गुण की समझ होने से हम अपना संतुलन रखने हेतु सब उपाय अच्छ से कर सकते हैं।

आयुर्वेद किसी के पथ्य या जीवन शैली (भोजन की आदतें और दैनिक दिनचर्या) पर विशेष महत्त्व देता है। मौसम में बदलाव के आधार पर जीवनशैली को कैसे अुनकूल बनाया जाये इस पर भी आयुर्वेद मार्गदर्शन देता है। आयुर्वेद के अनुसार कोई भी रोग केवल शारीरिक अथवा केवल मानसिक नहीं हो सकता। शारीरिक रोगों का प्रभाव मन पर पड़ता है एवं मानसिक रोगों का प्रभाव शरीर पर पड़ता है। इसीलिए सभी रोगों को मनो–दैहिक मानते हुए चिकित्सा की जाती है।

आयुर्वेद में ईलाज षोधन चिकित्सा और षमन चिकित्सा के द्वारा होता है–

शोधन चिकित्सा में शरीर से दूषित तत्वों को शरीर से निकाला जाता है। इसके कुछ उदाहरण है–वमन, विरेचन, वस्ति, नस्य।

शमन चिकित्सा में शरीर के दोषों को ठीक किया जाता है और शरीर को सामान्य स्थिति में वापस लाया जाता है। इसके कुछ उदाहरण है–दीपन, पाचन (पाचन तंत्र) और उपवास आदि। यह दोनों चिकित्सा प्रकार शरीर में मानसिक व शारीरिक शांति बनाने के लिए आवश्यक हैं।

आयुर्वेद में रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित करने पर बल दिया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य सदैव स्वस्थ रहता है।

चिकित्सा विज्ञान एवं आश्चर्यजनक रोग–शमन औषधियों का वर्णन अथर्ववेद में हजारों वर्ष पूर्व ही किया जा चुका है।

रक्त प्रवाह चक्र का वर्णन

अथर्ववेद में शरीर में प्रवाहित होने वाले रक्त प्रवाह चक्र का वर्णन किया गया है (अथर्व. 10.2.11)। इस मन्त्र में प्रश्नात्मक शैली से कहा है कि इस शरीर में उस आपः अर्थात् जल को किसने बनाया? जो शरीर में ऊपर की ओर तथा नीचे की ओर बढ़ता है और सब ओर बहकर हृदय में आता है। जो लाल रंग का है और लोहे से युक्त है। यहाँ आपः का अर्थ रक्त लिया गया

है। इस मन्त्र में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में शरीर के रक्त प्रवाह चक्र का वर्णन है। कहा जाता है कि ईसा की 17वीं शताब्दी में इंग्लैंड के डाक्टर हार्वे ने सबसे पहले शरीर के इस रक्त प्रवाह चक्र की खोज की थी परन्तु वेद में तो यह बात सृष्टि के आदि से विद्यमान है।

जल चिकित्सा

वेद में अनेक स्थानों पर जल को एक गुणकारी औषध के रूप में वर्णित किया गया है। अथर्ववेद के 1.4 सूक्त में कहा गया है कि जल में अमृत का निवास है। जिस प्रकार अमृत शारीरिक और मानसिक रोगों को दूर करके निरोगता, स्वास्थ्य, शन्ति और दीर्घ जीवन प्रदान करता है, उसी प्रकार शुद्ध जल के सम्यक सेवन से भी ये सब लाभ प्राप्त होते हैं। ''भिषजां सुभिषक्तमाः'' (अथर्व. 6.24) में जल को चिकित्सकों से भी बड़ा चिकित्सक बताया गया है और कहा गया है कि जलों के द्वारा हृदय के रोगों का और आँखों के रोगों का भी निवारण होता है तथा पैर के तलवे और पंजों के रोगों का भी शमन होता है। अथर्ववेद के 6.57 सूक्त में कहा गया है कि जल में वह सामर्थ्य है कि बाण आदि के द्वारा कट जाने से हुए घावों को भरने की शक्ति भी रखता है। (अथर्व. 19.2.5) मन्त्र में कहा गया है कि (आपः) जल के द्वारा यक्ष्मा (टी.बी.) रोग की भी चिकित्सा की जा सकती है।

सूर्य किरणों से चिकित्सा (क्रोमोपैथी)

वेद में सूर्य की किरणों से चिकित्सा करके पीलिया आदि रोागें के निवारण का उपदेश भी किया गया है। अथर्ववेद में कहा गया है कि सूर्य किरणों के सेवन से हृदय के रोग और उनसे जन्य हृदय की पीड़ा भी शान्त हो जाती है तथा सूर्य की लाल किरणों के (गोः रोहितेन) सेवन से पीलिया रोग भी दूर हो सकता है।

वेद में रोग निवारक औषधियों का वर्णन

वेद में अनेक औषधियों का वर्णन किया गया है, जो कि नाना प्रकार के रोगों के निवारण के लिए प्रयुक्त हो सकती हैं। उदाहरणार्थ–अथर्ववेद 10.3. सूक्त में वरुण नामक औषधि का वर्णन मिलता है। यह औषधि यक्ष्म रोग और नींद न आना तथा इनके कारण बुरे–बुरे स्वप्न आते रहना रूपी रोग की चिकित्सा के रूप में प्रयुक्त की जा सकती है। (अथर्व. 2.25) में 'पृश्नि पर्णी' औषधि का वर्णन है। जो रोग शरीर का रक्त पीकर दुर्बलता उत्पन्न कर देते हैं, शरीर के सौंदर्य को नष्ट कर देते हैं, स्त्रियों में गर्भ बनने नहीं देते हैं, गर्भ असमय में गिर जाने का कारण बनते हैं, ऐसे रोगों के उपचार के लिए यह औषधि प्रयुक्त होती है।

अथर्ववेद के 4.12. सूक्त में रोहिणी नामक औषधि का वर्णन है। यह औषधि तलवार आदि से कटी हुई हड्डियों को मांसपेशियों को, त्वचा को, नस–नाड़ियों को, जोड़ सकती है। और व्रण से बहते रुधिर को बंद कर सकती है। इसके अतिरिक्त इसी काण्ड के 17वें सूक्त में अपामार्ग औषधि का वर्णन है, यह औषधि अत्यधिक भूख लगने रूप रोग तथा अत्यधिक प्यास लगने रूपी रोग में काम आती है। अथर्व. 6.43 में दर्भ नामक औषधि का वर्णन है, यह औषधि क्रोधशील व्यक्ति के क्रोध को शमन करने में समर्थ है। अथर्व. 5.4 सूक्त में कुछ औषधि का वर्णन है, जो कि प्राण और व्यान के कष्टों को शान्त करती है।

Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com/* https://doi.org/10.31995/shodhmanthan

पुत्रदा औषधि

अथर्ववेद 6.11 सूक्त में एक ऐसी औषधि का वर्णन है जिसके सेवन से उस स्त्री को पुत्र हो सकता है जिसकी पुत्रियाँ ही होती हों और पुत्र न होता हो। इस सूक्त में लिखा है कि शमी अर्थात् जंड (जांडी) नामक वृक्ष के ऊपर पीपल का वृक्ष उगा हुआ हो तो उस पीपल को औषधि रूप में खिलने से उस स्त्री को पुत्र हो सकता है। सामान्यतः वृक्ष के फूल, पत्ते, छाल और जड़ें छाया में सुखा कर उसका बारीक चूर्ण बनाकर पानी या गौ के दूध के साथ सेवन कराया जाता है। इस पर कई लोगों ने परीक्षण करके देखा है, यह बात सत्य सिद्ध हुई है। इससे यह ज्ञात होता है कि वेदों में सब सत्य ज्ञान निहित है।

योग

आधुनकि युग में अधिक शारीरिक और भावनात्मक इच्छायें लगातार जीवन के अनेक क्षेत्रों पर भारी हो रही हैं। परिणामतः अधिकाधिक व्यक्ति खिंचाव, चिंता, अनिद्रा जैसे शारीरिक और मानसिक तनावों से पीड़ित रहते हैं और शारीरिक सक्रियता और उचित व्यायाम में एक असंतुलन बन गया है। यही कारण है कि स्वस्थ बने रहने और उसमें सुधार के साथ–साथ शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक समरसता बनाए रखने के लिए नई नई विधियों और तकनीकों का महत्व बढ़ गया है। 'योग' शब्द का उद्‌गम संस्कृत भाषा से है और इसका अर्थ 'जोड़ना, एकत्र करना' है। यौगिक व्यायामों का एक पवित्र प्रभाव होता है और यह शरीर, मन, चेतना और आत्मा को संतुलित करता है। योग हमें दैनन्दिन की माँगों, समस्याओं और परेशानियों का मुकाबला करने में सहायक होता है। योग स्वयं के बारे में समझ, जीवन का प्रयोजन और ईश्वर से हमारे संबंध की जानकारी विकसित करने के लिए सहायता करता है। आध्यात्मिक पथ पर योग हमको ब्रह्मांड के स्व के साथ वैयक्तिक स्व के शाश्वत परमानंद मिलन और सर्वोच्च ज्ञान को प्रशस्त करता है। योग सर्वोच्च ब्रह्मांडमय सिद्धान्त है। व्यायाम स्तरों का निर्धारण चिकित्सकों से परामर्श के बाद किए गये हैं और इस प्रकार–कथित नियमों और सावधानियों के पर्यवेक्षण के साथ–किसी भी व्यक्ति द्वारा घर पर स्वतंत्र रूप से अभ्यास किया जा सकता है। 'दैनिक जीवन में योग' एक प्रण्यप्रदा देने वाली प्रणाली है जिसका अर्थ है कि इसमें न केवल शारीरिक, अपितु मानसिक और आध्यात्मिक पक्षों पर भी विचार किया जा सकता है। सार्थक–सकारात्मक विचार, दृढ़ता, अनुशासन, सर्वोच्च के प्रति अभिविन्यास, प्रार्थना के साथ–साथ दयालुता और समझ, आत्मज्ञान और आत्मानुभूति का मार्ग प्रषस्त करते हैं।

आधुनिक जीवन में योग शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक स्वास्थ्य, आध्यात्मिक स्वास्थ्य एवं आत्मानुभूति या हमारे अपने अंदर दिव्यात्मा की अनुभूति प्रदान करता है, इस भौतिकवादी, क्लेशमय जीवन में योग की सबसे अधिक आवश्यकता है, थोड़ा–सा नियमित आसन और प्राणायाम हमें निरोगी तथा स्वस्थ रख सकता है। यम–नियमों के पालन से हमारा जीवन अनुशासन से प्रेरित हो चरित्र में अकल्पनीय परिवर्तन ला सकता है। धारणा एवं ध्यान के अभ्यास से वह न केवल तनावरहित होगा वरन कार्यकुशलता में पारंगत भी हो पायेगा। शारीरिक स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिए योगासनों का अपना महत्व और उपयोगिता है। आसनों

में शारीरिक सौष्ठव के साथ–साथ श्वास–प्रश्वास की प्रक्रिया और रक्त–संचार आवश्यक और नियमित रूप से बना रहता है जो स्वस्थ तन–मन के लिए बेहद जरूरी है।

महर्षि पतंजलि का अष्टांग योग भौतिक उन्नति के साथ आध्यात्मिक विकास के लिए मन पर नियंत्रण की प्रेरणा देता है यह केवल हिमालय पर रहने वाले साधु– संतों, सन्यासियों के लिए ही नहीं, अपितु सभी गृहस्थियों के लिए भी एक संमार्ग है। योग जीवन है एवं भोग मृत्यु है। आधुनिक जीवन में योग, चिकित्सा पद्धति के पूरक के रूप में कार्य कर रहा है, योग व्यायाम बहुत सारे रोगियों के लिए घरेलू कार्यक्रम के रूप में उपयुक्त होते हैं। चिकित्सक द्वारा व्यक्ति के लिए उनका चयन और अनुकूलन किया जा सकता है। स्पष्ट उदाहरण और पाठ अनुदेश रोगियों के लिए स्वतंत्रतापूर्वक उनका अभ्यास करना आसान बना देते हैं।

योग एक मानस शास्त्र है जिसमें मन को संयत करना और पाश्विक वृत्तियों से खींचना सिखाया जाता है। जीवन की सफलता, किसी भी क्षेत्र में संयत मन पर भी निर्भर करती है। मनःसंयम का अभिप्राय है किसी एक समय में किसी एक ही वस्तु पर चित्त का एकाग्र होना। दीर्घकाल तक अभ्यास करने से मन का ऐसा स्वभाव बन जाता है। किसी विषय को सोचते या किसी काम को करते हुए मन उस पर एकाग्र रहे, ऐसा अभ्यास करना आरंभ में तो बड़ा कठिन होता है, पर जब अभ्यास करते–करते वैसा स्वभाव बन जाता है, तब उससे बड़ा सुख होता है।

उपसंहार

आयुर्वेद का प्रमुख अंग योग का क्रियान्वयन न केवल आध्यात्मिक प्रयोजन के लिए किया जाता है बल्कि मानसिक शांति, शारीरिक शुद्धि और आरोग्यपूर्वक दीर्घजीवन की प्राप्ति के लिए भी किया जाता है। प्रकृति के मानदण्डों पर आधारित आयुर्वेद शास्त्र मनुष्य को संतुलित आहार, उत्तम दिनचर्या एवम् ऋतुचर्या वाला संतुलित विहार और इन्द्रिय विजय एवं विकार समाप्ति हेतु सद्वृत्त का आचरण करना सिखाता है, जो कि सदाचार पर आधारित होता है। जीवन के इन सभी सैद्धान्तिक मूल्यों को योग–कला के माध्यम से सहजतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है।

आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों के अनुसार वात, पित्त और कफ में से किसी एक के असन्तुलन से मानसिक अवस्था में तो परिवर्तन आता ही है, उससे शरीर पर कई बुरे प्रभाव पड़ते हैं। पतंजलि योग में वर्णित अष्टांग योग के प्रथत तीन अंगों– यम, नियम और आसन से त्रिदोष सन्तुलन में बड़ी सहायता मिलती है। योग और आयुर्वेद दोनों ही मूल रूप से शरीर से सम्बन्धित है। इनके आधारभूत सिद्धान्त सांख्य पर आधारित हैं। आयुर्वेदिक योग पतंजली के अष्टांग योग से ही ग्रहण किया गया है। इसका आधारभूत उद्देश्य है–अच्छा स्वास्थ्य, शारीरिक–मानसिक सन्तुलन और जीवन का सम्पूर्ण आनन्द।

आयुर्वेद एवं योग से असाध्य रोगों का सफल उपचार किया जाता है एवं वे रोग भी ठीक हो सकते हैं जिनका अन्य चिकित्सा पद्धतियों में कोई उपचार संभव नहीं है।

आयुर्वेद एक प्राकृतिक पद्धति है। बहुत से ऐसे रोग और मानसिक विकार हैं जिस पर

Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com/* https://doi.org/10.31995/shodhmanthan

योग के द्वारा समाधान नहीं प्राप्त किया जा सकता तो आयुर्वेद उसका विकल्प बन जाता है और बहुत से ऐसे रोग भी होते हैं जिसका समाधान आयुर्वेद में नहीं होता है तो योग उसका विकल्प बन जाता है।

इस लेख में हजारों वर्षों से चले आ रहे इस अद्भुत ज्ञान आयुर्वेद और योग जिससे मनुष्य शतायु हो सकते हैं का सम्बन्ध स्थापित का प्रयास किया है। ऋषियों–मुनियों के द्वारा दिया गया यह ज्ञान प्रत्येक काल के लिए महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. विनोद वर्मा,राधाकृष्ण प्रकाशन, *पतंजलि और आयुर्वेदिक योग,* 2018
2. आचार्य राजकुमार जैन, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, *योग और आयुर्वेद,* 2011
3. डॉ. कर्मानंद सरस्वती, स्वर्ण जयन्ती प्रकाशन, *रोग और योग,* 2013